

प्रार्थना : परदा दूर करो

प्रार्थना करने का मुख्य हेतु आत्मा में विद्यमान परन्तु प्रसुप्त व्यक्तियों को जागृत करना है । कल्पना कीजिए, यदि माचिस की तूली से प्रश्न किया जाय कि तू आगपेटी से क्यों रगड़ खाती है, तो क्या उत्तर मिलेगा ? उत्तर होगा—जलने के लिए, अपने तेज को प्रकट करने के लिए ।

मनुष्य की चित्तवृत्ति चेतना तूली के समान है और मनुष्य तूली रगड़ने वाले के समान । यहां भी यही प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिर चित्तवृत्ति को परमात्मा के साथ क्यों रगड़ा जाता है ? परमात्मा के चरणों के साथ उसे किस लिए घिसा जाता है ? तब साधक का भी यही उत्तर होगा—जलने के लिए अपने तेज को प्रकट करने के लिए ।

संसारि जीव ने अपनी तूली (चित्तवृत्ति) को कभी धन से, कभी तन से और कभी अन्य सांसारिक साधनों से रगड़ते-रगड़ते अल्पसत्त्व बना लिया है । अब उसे होश आया है और वह चाहता है कि तूली की शेष शक्ति भी कहीं इसी प्रकार बेकार न चली जाय । अगर वह शेष शक्ति का सावधानी के साथ सदुपयोग करे, तो उसे पश्चात्ताप करके बैठे रहने का कोई कारण नहीं है उसी बची-खुची शक्ति से वह तेज को प्रस्फुटित कर सकता है, क्रमशः उसे बढ़ा सकता है और पूर्ण तेजोमय भी बन सकता है । वह पिछली तमाम हानि को भी पूरी कर सकता है ।

चित्तवृत्ति की तूली को परमात्मा के साथ रगड़ने का विधिपूर्वक किया जाने वाला प्रयास ही प्रार्थना है ।

इसके विपरीत जो अब भी होश में नहीं आया है और अब भी अपनी मनोवृत्ति को परमात्मा में न लगा कर धन-जन आदि सांसारिक साधनों में ही लगा रहा है । वह उस मूर्ख के समान है, जिसने पत्थर पर रगड़-रगड़ कर अधिकांश तूलियों को बेकार कर दिया है और बची-खुची तूलियों को भी उसी प्रकार नष्ट करना चाहता है, वह हाथ मलता रह जायेगा ।

आत्मा के लिए परमात्मा सजातीय और जड़ पदार्थ विजातीय हैं । सजातीय द्रव्य के साथ रगड़ होने पर ज्योति प्रकट होती है और विजातीय के साथ रगड़ होने से ज्योति घटती है । विश्व के मूल में जड़ और चेतन दो ही

तत्त्व हैं । चेतन का चेतन के साथ सम्बन्ध होना सजातीय रगड़ है और जड़ के साथ सम्बन्ध होना विजातीय रगड़ है ।

ज्ञानी पुरुषों के साथ तत्त्वविमर्श करने से ज्ञान की वृद्धि होती है । उनके साथ किया हुआ विचार-विमर्श संवाद कहलाता है और जब मूर्खों के साथ माथा रगड़ा जाता है, तो वह विवाद का रूप धारण कर लेता है और शक्ति का वृथा क्षय होता है, कलह, क्रोध और हिंसा की वृद्धि होती है, तकरार बढ़ती है और स्वयं की शांति भी समाप्त हो जाती है । अतएव हमारी प्रार्थना का ध्येय है—जिन्होंने अज्ञान का आवरण छिन्न-भिन्न कर दिया है, मोह के तमस को हटा दिया है । अतएव जो वीतरागता और सर्वज्ञता की स्थिति पर पहुँचे हैं, जिन्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल और अनन्त शांति प्राप्त हुई है, अनन्त सुख सम्पत्ति का भण्डार जिनके लिए खुल गया है । उन परमात्मा के साथ रगड़ खाना और इसका आशय है—अपने अन्तर की ज्योति को जगाना ।

वह ज्योति कहीं से उधार खरीद कर नहीं लानी पड़ती, यह आत्मा में ही विद्यमान है; मगर आवरणों की सघनता के कारण वह दबी हुई है, छिपी हुई है । उसे ऊपरी दृष्टि से हम देख नहीं पाते । तिल के दाने में तेल मौजूद है, मगर उसकी अभिव्यक्ति के लिए रगड़ की आवश्यकता होती है । बिना रगड़ के वह नहीं निकलता । तिल के दानों को लेकर बच्चा यदि किसी पत्थर से धमाधम कूटने लगे तो भी क्या होगा ? तब भी वह ठीक तरह से नहीं निकलेगा । वह काम नहीं आ सकेगा । इसी प्रकार दूध में मक्खन है, दही में मक्खन है और दियासलाई में आग मौजूद है । फिर इन सबको रगड़ की अपेक्षा रहती है, मंथन की अपेक्षा रहती है ।

मगर मंथने की भी एक विशिष्ट विधि होती है । ठीक मथनी हा और जानकार मंथन करने वाला हो, तो ही दही में से मक्खन निकलता है । अगर आपको मथनी पकड़ा दी जाय, तो मक्खन निकाल सकेंगे ? नहीं, जो मंथन-क्रिया में अकुशल है, वह नहीं निकाल सकता । यद्यपि दूध-दही में मक्खन दीखता नहीं है, फिर भी कुशल मंथनकर्ता कुछ ही मिनटों में विधिपूर्वक मथानी घुमा कर मक्खन निकाल लेता है ।

प्रार्थना भी मथनी घुमाना है; मगर जैसा कि अभी कहा गया, वह विधिपूर्वक होना चाहिए । सर्वप्रथम तो उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए । जैसे मथनी घुमाने का उद्देश्य नवनीत प्राप्त करना है, उसी प्रकार प्रार्थना का उद्देश्य परमात्मभाव रूप मक्खन को प्राप्त करना है । मन्थनध्वनि के समान जब

प्रार्थना की वाणी प्रस्फुटित होती है और जब विधिपूर्वक मन-मथानी से मन्थन किया जाता है, तब परमात्मभाव रूप नवनीत प्राप्त होता है।

जैसे दही नवनीत सजातीय है; उनके मूल में अन्तर नहीं है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा मूलतः एक ही है। जैन दर्शन आत्मा की अलग और परमात्मा की अलग जाति स्वीकार नहीं करता। फिर भी दोनों के परिणमन पृथक-पृथक हैं। इस पार्थक्य को दूर करना ही साधना और प्रार्थना का प्रयोजन है। जिसे विधिपूर्वक मनोमन्थन करने से मक्खन मिल गया है, वह परमात्मा है और जो उस मक्खन को प्राप्त नहीं कर पाया है, वह आत्मा है। जिस आत्मा में ज्ञान-आनन्द रूप नवनीत को प्राप्त करने की प्रबल भावना जाग उठी है, वह साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। वह परमात्मा के चरणों का शरणाग्रहण करके उसके स्वरूप का और फिर स्वरूप के माध्यम से निजस्वरूप का चिन्तन करता है, स्मरण करता है, उसमें तल्लीन होकर रमण करता है और इस प्रकार अपने विशुद्ध चैतन्यस्वरूप को विकसित और प्राप्त कर लेता है।

साधक इस उद्देश्य को समक्ष रख कर जब साधना के क्षेत्र में पाँव रखता है, तो उसके मन में से संकोच हट जाता है। वह यह नहीं सोचता कि मैं पूर्ण विशुद्ध स्वरूप के साथ रगड़ खाने का कैसे अधिकारी हो सकता हूँ; वह बिल्कुल निष्कलंक और मैं कलंक-कालिमा से पुता हुआ ! मुझ में काम, क्रोध, मन, मोह, मान, माया आदि दोष हैं, विविध प्रकार की अज्ञानमय वृत्तियाँ वर्तमान हैं। मैं उस शिवस्वरूप सिद्धस्वरूप के साथ कैसे रगड़ खाऊँ ! मेरी-उसकी क्या समता है ?

पर नहीं, साधक और प्रार्थी अब अपने को परमात्मा के चरणों में रगड़ने के लिए प्रस्तुत करता है, तो कहता है—प्रभो ! मेरी वर्तमान योग्यता को नहीं देखना है, बल्कि मेरी शक्ति को देखना है। आपको जिस शक्ति की अभिव्यक्ति हो चुकी है, सत्ता रूप में बही मुझ में है। मगर वह सोई हुई शक्ति आपके साथ टक्कर किये बिना जागती नहीं है। इसी विश्वास और इसी आशा से मैं आपके चरणों में प्रस्तुत हुआ हूँ।

लोहे का टुकड़ा स्वर्ण बनने के लिए और मूल्यवान् बनने के लिए जैसे पारस के पास पहुँचता है और हीरे का कण अपनी चमक बढ़ाने के लिए कसौटी के निकट पहुँचता है, उसी तरह मैं भी, हे प्रभो ! तेरे पास आया हूँ।
अतएव—

प्रभु मेरे अवगुण चित्त न धरो,
 स्वामी मेरे अवगुण चित्त न धरो ।
 समदर्शी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो ।
 प्रभु मेरे० ॥

इक लोहा ठाकुर पूजा में,
 इक घर बधिक पर्यो ।
 पारस गुण अवगुण न विचारे,
 कंचन करत खरो ॥ प्रभु मेरे० ॥

क्या कहता है भक्त अपने को अर्पित करता हुआ ? वह अन्तःकरण को खोल कर, निष्कपट भाव से प्रभु के चरणों में उंडेल देता है । कहता है— प्रभो ! तुम समदर्शी कहलाते हो । कोई कुल की दृष्टि से, कोई बल की दृष्टि से, कोई सत्ता और अधिकार आदि की दृष्टि से किसी को ऊँचा और किसी को नीचा समझता है । मगर तुम तो किसी को ऊँचा और किसी को नीचा नहीं मानते । तुम्हारा यह स्वभाव ही नहीं है । तुम तो जीव के मूल स्वभाव को जानते हो । तुम्हारा सिद्धान्त तो यही बतलाता है कि उस बच्चे में भी जिसे लिखना, पढ़ना अथवा बोलना भी नहीं आता, अनन्त ज्ञान का भण्डार भरा है, उसमें भी अनन्त ज्ञानी और परमज्योतिर्मय देव विराजमान हैं ।

और बालक की बात भी छाड़िए । आखिर वह भी मनुष्य है और पाँच इन्द्रियों का तथा मन का धनी है । उससे भी छोटे और नीचे स्तर के जीव-धारियों को लें । एक कीड़े को लें या एकेन्द्रिय जीव पर ये ही विचार करें । उसकी चेतना एक दम सुषुप्त है, वह रोना नहीं जानता, हँसना भी नहीं जानता, चलना फिरना भी नहीं जानता । फिर भी उसमें परमात्मिक शक्तियाँ विद्यमान हैं । वही शक्तियाँ जो आदिनाथ में, पश्वनाथ में और महावीर में हैं ।

तो भक्त कहता है—

समदर्शी है नाम तिहारो ।

प्रभो ! आप समदर्शी कहलाते हैं, तो मुझे भी पार कर दो, मुझे भी उसी पूर्णता पर पहुँचा दो ।

कोई कह सकता है—अरे तू पार करने की मांग करता है परन्तु जरा अपनी ओर तो देख ! अपने रूप को देख कि तू कैसा है ?

प्रार्थी कहता है—भाई, बात तुम्हारी सच्ची है। मैं अशुद्ध हूँ। कलंकित हूँ, कल्मषग्रस्त हूँ, मगर यह भी तो सत्य है कि कि ऐसा होने के कारण ही यह प्रार्थना कर रहा हूँ। अशुद्ध न होता तो शुद्ध होने की प्रार्थना क्यों करता ? कलंकित न होता तो निष्कलंक होने की प्रार्थना क्यों करता ? जो शुद्ध है, बुद्ध है और पूर्ण है, उसे प्रार्थना की दरकार ही नहीं होती।

एक छोटा सा नाला अत्यन्त गंदले पानी का नाला, जब गंगा की धारा के साथ मिलता है और गंगा उसे थोड़ी दूर तक संग-संग ले जाती है, तो वह गंदा पानी, गटर का पानी भी गंगाजल बन जाता है। उसकी मलिनता गंगा-जल से धुल जाती है। मगर ऐसा होगा तभी जब वह कुछ क्षणों तक गंगा के साथ मिल कर चलेगा।

तो प्रार्थना में हमें क्या करना है ? परमात्मा के स्वरूप के साथ मिलकर चलना है।

प्रार्थना में आप बोलते रहे कि—प्रभो ! आप में राग नहीं, द्वेष नहीं, रोष नहीं, आप वीतराग हैं, परन्तु आपका रंग भगवान् के रंग में न मिल रहा हो, आप उनके शब्दों के साथ न चल रहे हों, तो वैसी निर्मलता आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? अगर आप गंगा रूप बनना चाहते हैं तो अपने आपको गंगा जी की धारा में परमात्मस्वरूप में मिलाकर कुछ समय तक संग-संग चलना पड़ेगा। ऐसा किया तो आपको मलिनता दूर हो जाएगी और आप में निर्मलता आ जाएगी।

अगर हम अपने अन्तःकरण को परमात्मा में मिला कर एकरूप नहीं कर लेते, आत्मा और परमात्मा के बीच व्यवधान बना रहने देते हैं, तो दस, बीस वर्ष तक क्या, असंख्य जन्मों तक पचने पर भी परमात्मामय नहीं बन सकते। हमारी मलिनता दूर नहीं हो सकती। वह तो तभी दूर होगी जब दोनों के बीच का पर्दा हट जाय, दोनों में कोई व्यवधान न रह जाय और हम अपने चित्त को परमात्मा के विराट् स्वरूप में तल्लीन कर दें।

कुछ दिन पहले अर्जुनमाली का उदाहरण आपके सामने रक्खा था। वह छह महीनों तक भयानक हिंसाकृत्य में रचा-पचा रहा, मगर जब भगवान् महावीर के चरणों में जा पड़ा और उनकी विचारधारा में मिल कर बहने लगा, अपना आपा खोकर तन्मय हो गया तो उसे शुद्ध-बुद्ध और निर्मल होते क्या देर लगी ? सारा मैल धुल गया।

इसी प्रकार आप भी अपने अन्तःकरण को वीतराग-स्वरूप के साथ संजो कर और बीच के समस्त पर्दों को हटा कर चलोमे तो वीतराग बन आओमे प्राचीन सन्त ने कहा है—

मैं जानूँ हरि दूर है, हरि हिरदे के मांहि ।

आड़ी टाटी कपट की, तासैं सुभक्त नाहि ॥

भगवान् बहुत दूर नहीं हैं, बल्कि अत्यन्त निकट हैं । प्रश्न होता है कि निकट हैं, तो दिखाई क्यों नहीं देते ? इस प्रश्न के उत्तर में सन्त कहता है— दोनों के बीच एक टाटी खड़ी है—परदा पड़ा हुआ है, इसी कारण वह दिखाई नहीं देता । अगर परदा हट जाय तो वह दिखाई देने लगेगा । यही नहीं, अपने ही भीतर प्रतिभासित होने लगेगा ।

जीव शिव से मिलने गया—परमात्मा से मिलने चला परन्तु परदा रख कर चला तो ? उसने समझा—मैं बड़ा साधक हूँ, बड़ा ज्ञानी हूँ, धनी हूँ, ओहदेदार हूँ । इस प्रकार माया का परदा रख कर गया और इस रूप में भले ही वीतराग के साथ प्रार्थना की, रगड़ की, तब भी क्या वीतरामता प्राप्त की जा सकेगी ? नहीं, क्योंकि बीच में परदा जो रह गया है । परदे की विद्यमानता में रगड़ से आप जो ज्योति जगाना चाहते हैं, वह नहीं जास सकती । अतएव परदे को हटाना आवश्यक है । आप ऐसा करेंगे तो परम आन्ति पा सकेंगे, परम ज्योति जगा सकेंगे, परमानन्द प्राप्त कर सकेंगे ।



अमृत-करण

- प्रभु की प्रार्थना साधना का ऐसा अंग है, जो किसी भी साधक के लिए कष्टसाध्य नहीं है । प्रत्येक साधक, जिसके हृदय में परमात्मा के प्रति गहरा अनुराग है, प्रार्थना कर सकता है ।
- जो मानव आत्मदैव की प्रार्थना करता है, वह शिव-शक्ति का अधिकारी बन जाता है । एक बार शिव-शक्ति की उपलब्धि हो जाने पर प्रार्थी कृतार्थ हो जाता है और उसे प्रार्थना की भी आवश्यकता नहीं रह जाती ।

—आचार्य श्री हस्ती